बी.एस.ओ.सी.-106 : धर्म का समाजशास्त्र
अध्यापक जाँच सत्रीय कार्य

कार्यक्रम कोड : BASOH
पाठ्यक्रम कोडः **BSOC-106**
सत्रीय कार्य कोड : **बी.एस.ओ.सी -106 /ए.एस.एस.टी./TMA/2026-27**
अधिकतम अंकः **100**

नोटः यह सत्रीय कार्य तीन भागों में विभाजित हैं।

सत्रीय कार्य – I

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए। प्रत्येक प्रश्न 20 अंकों का है।

1. धर्म के संबंध में कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के दृष्टिकोणों की तुलना कीजिए। 20

2. धार्मिक जीवन में मिथकों और प्रतीकों की भूमिका का परीक्षण कीजिए। 20

सत्रीय कार्य – II

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए। प्रत्येक प्रश्न 10 अंकों का है।

3. दुर्खीम की पवित्र (Sacred) और अपवित्र/सामान्य (Profane) की अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए। 10

4. 'नागरिक धर्म (Civil Religion)' से आप क्या समझते हैं? इसकी व्याख्या कीजिए। 10

5. 'धार्मिक बहुलतावाद (Religious Pluralism)' क्या है? 10

सत्रीय कार्य – III

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए। प्रत्येक प्रश्न 6 अंकों का है।

6. जीववाद (Animism) क्या है? 06

7. टोटमवाद (Totemism) की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। 06

8. एक संप्रदाय (Sect) की मुख्य विशेषताएँ बताइए। 06

9. धर्म के सामाजिक कार्यों (Social Functions of Religion) की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए। 06

10. करिश्मा (Charisma) की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। 06

1. धर्म के संबंध में कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के दृष्टिकोणों की तुलना कीजिए। 20

उत्तर

प्रस्तावना

धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन केवल ईश्वर में आस्था या पूजा-पद्धति का अध्ययन नहीं है। इसमें यह समझना भी शामिल है कि धर्म सामाजिक असमानता, आर्थिक गतिविधियों, राजनीतिक अधिकार, मूल्य और व्यक्ति के आचरण से किस प्रकार जुड़ता है। कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर ने धर्म तथा समाज के संबंध पर गहरा विचार किया, लेकिन उनकी मूल समस्याएँ और अनुसंधान-पद्धतियाँ भिन्न थीं। मार्क्स ने धर्म को वर्ग-विभाजित भौतिक समाज तथा शोषण की परिस्थितियों से जोड़कर देखा, जबकि वेबर ने धार्मिक विश्वासों को अर्थपूर्ण सामाजिक क्रिया और आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करने वाली ऐतिहासिक शक्ति के रूप में समझा। दोनों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन धर्म की जटिल भूमिका स्पष्ट करता है।

मार्क्स का भौतिकवादी दृष्टिकोण

मार्क्स के अनुसार मनुष्य की सामाजिक चेतना को उसकी ठोस जीवन-परिस्थितियों से अलग नहीं किया जा सकता। उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण, श्रम-विभाजन, संपत्ति और वर्ग-संबंध व्यापक सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित करते हैं। धर्म भी इन्हीं संबंधों के भीतर विकसित होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक धार्मिक वाक्य सीधे किसी आर्थिक हित से निकला हो, बल्कि धर्म की संस्थागत शक्ति और सामाजिक भूमिका को समझने के लिए ऐतिहासिक उत्पादन-संबंधों का परीक्षण आवश्यक है। मार्क्स ने धर्म को पीड़ित मनुष्य की आह, हृदयहीन दुनिया का हृदय और 'जनता की अफीम' कहा। यह प्रसिद्ध कथन केवल निंदा नहीं था; उसमें धर्म द्वारा दुखी लोगों को सांत्वना देने और साथ ही दुख पैदा करने वाली वास्तविक परिस्थितियों को अप्रश्नित रहने देने, दोनों बातों की ओर संकेत है।

वर्गीय समाज में धार्मिक मान्यताएँ कई बार गरीबी, असमानता और प्रभुत्व को ईश्वरीय विधान, भाग्य अथवा अगले जन्म के प्रतिफल के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इससे शोषण के विरुद्ध सामूहिक प्रश्न उठाना कठिन हो सकता है। धर्म से जुड़ी संस्थाएँ कभी शासक वर्ग के नैतिक अधिकार को